अनुसन्धान प्रवाह Anusandhan Pravah
(An Open Access, Peer Reviewed, Multidisciplinary, Bilingual E-Journal)
ISSN: 3108-1541
Vol.2, Issue 1,Year 2025, pp 107-116
URL : https://journal.sskhannagirlsdc.ac.in/

भारतीय चिंतन परंपरा और जयशंकर प्रसाद

डॉ० विन्ध्याचल यादव
असि०प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

सारांश:

"प्रसाद जी एक सांस्कृतिक योद्धा हैं... कामायनी सांस्कृतिक चेतना के सपनों का काव्य है।"

:आचार्य रामविलास शर्मा

जयशंकर प्रसाद भारतीय इतिहास और दर्शन के गहन अध्येता थे। औपचारिक शिक्षा की दृष्टि से प्रसाद भी 'मसि कागद छूयो नहीं' की स्थिति में ही थे,किंतु स्वाध्यायी बहुत थे। प्रसाद जी 'स्वाध्याय को बुद्धि का यज्ञ' मानते थे; किंतु स्वाध्याय उनके यहां पांडित्य के प्रदर्शन का प्रयोजन नहीं रखता,इसका असली प्रयोजन उस भारतीय दर्शन, हिंदी कविता और भारतीय साहित्य की परंपरा को जानना और इस बहाने स्वयं को समृद्ध करना था जो उनके लेखन को ऊर्जा का सौंदर्य प्रदान कर सके। प्रसाद ने पश्चिमी आधुनिकता के भौतिकवादी आग्रहों और अतियों का सामना भारतीय ज्ञान भंडार के गंभीर अध्ययन से निकाले अपने निष्कर्षों से किया। भारतीय आधुनिकता और ज्ञान-कांड के प्रसाद मर्मी रचनाकार थे। उन्होंने इतिहास को भारतीय दृष्टि

Article Publication:
Published online on: 30/12/2025

Corresponding Author:
डॉ० विन्ध्याचल यादव
असि०प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005
Email: vindhyachal@bhu.ac.in

©S.S. Khanna Girls Degree College

Scan For Paper

से देखा और अपनी कृतियों में उसकी युगीन सांस्कृतिक व्याख्या की।इसी भारतीय दृष्टि के कारण ही संभव हो पाया कि प्रसाद के यहां इतिहास की परिधि में मिथक और आख्यान,पुराण और किंवदंतियां भी बड़े प्रशस्त ढंग से आ सके हैं। उन्होंने बुद्धि(इड़ा) और भावना(श्रद्धा) दोनों को ट्रांसीडेंस (अध्यात्म) की जमीन पर एक साथ साधा। जाहिर है बुद्धिवाद पश्चिमी ज्ञान मीमांसा का मूल था,तो भाववाद भारतीय दृष्टि का मुख्य केंद्र । लेकिन भौतिकता की जगह आध्यात्मिक विकास की केंद्रीय भारतीय दृष्टि ने प्रसाद को सच्ची मानवता की राह दिखाई। इस तरह प्रसाद एक दार्शनिक कवि हैं।कोरे दार्शनिक नहीं। दर्शन के सांस्कृतिक प्रयोक्ता।इसी अर्थ में वे एक योद्धा कवि हैं,जिन्होंने पश्चिमी भौतिकवाद का सामना भारतीय अध्यात्मवाद और भारतीय सौंदर्यशास्त्र के माध्यम से किया।

बीज शब्द:

साम्राज्यवाद,सभ्यता-समीक्षा,देशज आधुनिकता, भारतीय-दृष्टि,अध्यात्मवाद,प्रत्यभिज्ञा-दर्शन,विश्वबोध, प्राच्यवाद, समाजवाद, भौतिकवाद, भारतबोध, गांधीवाद, आनंदवाद, भाववाद,संकल्पात्मक अनुभूति, पलायनवाद, रागवादी जीवन-दृष्टि,महाचिति और फैंटेसी इत्यादि।

मूल आलेख:

प्रसाद का सीधा आग्रह है कि हम अपनी ज्ञान परंपरा और जीवनधारा को अपनी दृष्टि से देखें।भारत क्या है?इसकी अस्मिता क्या है?विश्व पटल पर यह साम्राज्यवादी सभ्यताओं से किस मायने में भिन्न है और क्यों इसकी विशिष्टता और विश्वबोध को बचाया जाना चाहिए? यह आज भी एक बड़ी लड़ाई है,जिसे छायावाद के प्रतिनिधि कवि प्रसाद अपने समय में गांधी और रविंद्रनाथ के साथ और समानांतर लड़ रहे थे। प्रसाद जी की इस दृष्टि के कारण भारतीय इतिहास और दर्शन दोनों ही राष्ट्रीय संस्कृति के अविछिन्न अंग बन गए हैं।कहीं भी इनका विछोह नहीं होने पाया ।[1] इसी के चलते उनकी कविता और नाटकों में भारतीय इतिहास और उसके पीछे काम करने वाली जातीय चेतना की आवाजें सबसे ज्यादा मुखरित हैं।अकारण ही नहीं है कि उनके लेखन में सांस्कृतिक सुगंधों की अनुगूंज का वर्चस्व है।[2] प्रसाद की इसी सांस्कृतिक सौंदर्यदृष्टि को रघुवीर सहाय से अपनी एक बातचीत में अज्ञेय स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "धर्म की एक भारतीय परिभाषा रही जो संसार में और किसी जाति ने, किसी सभ्यता ने नहीं की।...और दूसरी तरफ काल की

अवधारणा है जो पश्चिम की तुलना में तो बहुत विशेष हो जाती है... तो यह हम कह सकते हैं कि हमारी इस सभ्यता के विकास में एक विशेष अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई और उसको हम भारतीयता का लक्षण मान सकते हैं।"[3]

अज्ञेय यह भी कहना जरूरी मानते हैं कि ऐसी स्थितियां तभी उपस्थित होती हैं जब संस्कृति और सभ्यता के क्षेत्र में टकराहटें शुरू होती हैं। ऐसी ही स्थितियों में प्रसाद ने भारतीय समाज विज्ञानी और चिंतक की तरह अपने जातीय चित्त,मानस और सृजनशीलता का प्रत्यावर्तन किया और भारतीय संस्कृति व सौदर्यबोध को यूं उद्घाटित किया "संस्कृति सौंदर्यबोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है।"[4] जिसका समर्थन डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक 'इंडियाज इंटेलेक्चुअल ट्रेडीशन' की भूमिका में यह लिखकर किया-"प्राच्यवादियों के अपने निहित स्वार्थ थे, जिनके चलते उन्होंने 18वीं और 19वीं शताब्दी के अध्ययनों में भारत की सृजनशीलता को कमतर आंकने और दिखाने की कोशिश की। व्यापक अर्थों में यह उनकी एक सांस्कृतिक साजिश थी।"

प्रसिद्ध ललित निबंधकार कुबेरनाथ राय ने अपनी पुस्तक 'पत्र मणिपुतुल के नाम' में इस संदर्भ में अन्य कई महत्वपूर्ण हवाले दिए हैं। वे लिखते हैं, "देखी पुतुल, विश्व इतिहास में 19वीं सदी तक आते-आते भारतवर्ष अपनी प्रतिष्ठा का मुकदमा हार चुका था। परंतु उसे अंतिम पराजय से बचाने वाले भारतीयों में तीन नाम विशेष रूप से आते हैं- विवेकानंद, रविन्द्रनाथ और तीसरा एक अपेक्षाकृत अल्पज्ञात नाम है सर आनंद कुमारस्वामी।" पहले ने उसकी दार्शनिक महिमा को विश्व इतिहास की अदालत में उपस्थित किया, दूसरे ने साहित्यिक महिमा को और तीसरे ने उसकी कलात्मक गरिमा को।इन तीनों ने मिलकर भारतीय अस्मिता को न केवल पश्चिम के मुकाबले खड़ा किया,बल्कि प्रतिष्ठित किया। इसी जगह पर आलोचक विजय बहादुर सिंह ने बड़ी माकूल टिप्पणी की है 'कुबेरनाथ राय भले ही इसमें पांचवा नाम जोड़ने में चूक कर गए हों! किंतु बुद्धि और रचनात्मक धरातल पर प्रसाद ने जो लड़ाईयां लड़ी हैं,वे हमारी इसी भारतीय चेतना की लड़ाई के हिस्से हैं।"[5] गौरतलब है कि इस सूची में कुबेरनाथ राय ने चौथा नाम गांधी का लिया था।

इस संदर्भ में प्रसिद्ध समाजवादी चितक किशन पटनायक का लेख 'गुलाम दिमाग का छेद' बेहद पठनीय है। 'हिंद स्वराज' की खूबियों का बयान करते हुए वे लिखते हैं कि "गांधी उस बहाने भारत को 18वीं सदी में ले जाने का अभियान-सा छेड़े हुए थे,जिससे गुलामी से पहले वाली स्थिति में खड़े होकर हम अपनी यात्रा फिर से शुरू कर सकें!गांधी ने इसे समझ लिया था कि हम अपनी बुनियादी स्वाधीनता गवां चुके हैं। इतना ही क्यों बल्कि उपनिवेशवादी

साम्राज्यवादियों के मुहावरों में बुरी तरह फंस चुके हैं।"[6] इस तरह हम जयशंकर प्रसाद को औपनिवेशिक आधुनिकता के खिलाफ देशज आधुनिकता का विकल्प लेकर लगातार जूझते हुए पाते हैं। नंददुलारे वाजपेई ने उनके सांस्कृतिक चिंतन के बारे में ठीक ही मूल्यांकन किया है कि "प्रसाद के काव्य की मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है।"[7] किंतु इस संदर्भ में यह सावधानी बरतनी पड़ेगी कि छायावादियों का आध्यात्मिक विश्व कर्मकांडी हिंदुत्ववादियों या फिर किन्हीं दूसरे संप्रदायवादियों का विश्व नहीं है।...प्रसाद उन अतीतवादियों में भी नहीं हैं जो राष्ट्रवाद और अतिवादी या फिर उग्र भारतीय वेद के नाम पर देश के आवाम को अतीत की अंधी गुफाओं की ओर ले जाना चाहते हैं।इसके विपरीत वे उसी तर्कसंगत,उर्जास्पद अतीत की याद दिलाते हैं जो आधुनिक भारत को शक्ति और तेज से युक्त कर सके।[8] वाजपेई जी ने लिखा है कि इसीलिए मैं प्रसाद जी को हिंदी का सबसे प्रथम और सबसे श्रेष्ठ शक्तिवादी और आनंदवादी कवि मानता हूं।[9] इधर प्रसाद के महत् योगदानों को केंद्र में रखकर डॉ. करूणा शंकर उपाध्याय की किताब आई है जिसमें उनकी दृष्टि है- "प्रसाद जी बड़ी चिंता के रचनाकार हैं।इनके चिंतन के केंद्र में भारतीय अस्मिताबोध और विश्व मनुष्यता का मंगल है।इसके लिए आप भारतबोध का एक अभिनव प्रतिमान निर्मित करते हैं।"[10]

यह सच है कि सांस्कृतिक चेतना दर्शन और अर्जित नहीं की जा सकती। प्रसाद का समूचा रचना-कर्म और चेतना दर्शन, इतिहास और संस्कृति के त्रिकोण से संवलित है। 'कामायनी:एक पुनर्विचार' में मुक्तिबोध ने इस तरह के त्रिकोण की चर्चा की है,"मनुष्य के अंतर्जीवन का इतिहास बाह्य द्वारा दिए गए तत्वों से बना हुआ होता है।"[11] यहां बाह्य जगत (आर्थिक संरचना और उत्पादन संबंध) त्रिकोण की एक भुजा है। इसी से निर्धारित होता हमारा आभ्यंतर लोक त्रिभुज की दूसरी भुजा है। तीसरी भुजा है हमारी चेतना।जो न तो बाह्य जगत के उत्पादन संबंधों द्वारा पूर्णतः निर्धारित हो सकती है और न ही उसे पूरी तरह नियमित कर सकती है। प्रसाद की स्वाधीन चेतना ने इतिहास और दर्शन के संग इसी द्वंद्वात्मक प्रक्रिया के तहत संस्कृति के तत्वों को परस्पर घुला-मिला दिया है।प्रसाद का साहित्य इन्हीं का विलयन है।

भारतीय संस्कृति मूलतः आत्मा की संस्कृति रही है।यानी किसी भी भौतिकवादी या कृत्रिम जीवनशैली के बरक्श भारतीय संस्कृति अंतस् के परिस्पन्द अर्थात आध्यात्मिक उठान की संस्कृति रही है। इसमें संवेदनाओं के प्रसरण और हृदय की मुक्तावस्था को प्रेय माना जाता है। प्रसाद ने जब कविता और कला को परिभाषित किया तो उसे 'आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति' के रूप में किया। कहना न होगा कि उनकी आत्मा की सकल्प दशा भारतीय चिंता धारा के

सांस्कृतिक स्वभाव कितने अनुकूल पड़ती है!

प्रसाद की सर्जना के केंद्र में असंदिग्ध रूप से जो भाव चेतना है जिसमें बुद्धि-ज्ञान-कर्म-यथार्थ-इहलोक-परलोक सभी का समाहार है।प्रभाकर श्रोत्रिय ने ठीक ही कहा है कि "उनकी दार्शनिक पद्धति में यह 'ज्ञानोत्तरा भक्ति' है अर्थात् वह भक्ति जो ज्ञान से गुजरकर मिलती है ज्ञान से छिटककर नहीं।"[12] इसीलिए प्रसाद ने श्रद्धा और इड़ा को परस्पर विरोधी रूप में नहीं वरन् पूरक रूप में रचा है। प्रसाद भाववादी रचनाकार नहीं वरन् भाव चेतस रचनाकार हैं जहां पलायन, उन्माद, स्वप्न, कल्पना, वायवीयता या व्यक्तिवादी एकांत प्रति-भाववाद के रूप में रचे गए हैं। इनकी प्रयोजनीयता मानवीय संस्कृति की अजस्रधारा से अनुप्राणित है।प्रसाद ने अपनी रचना-प्रक्रिया में दर्शन के तथ्य और इतिहास की घटना को मनुष्यता के मनोविज्ञान से जोड़कर दर्शन और इतिहास के एक बड़े हिस्से को संस्कृति कर दिया है।सच तो यह है कि दर्शन और इतिहास बिना संस्कृति का हिस्सा बने कविता और कला में ढल ही नहीं सकते।

प्रसाद ने इतिहास के साथ दो महत्वपूर्ण और आवश्यक कार्य किया। पहला उन्होंने कालक्रमानुसार तथ्यपूर्ण घटनाओं के विन्यास को ही इतिहास नहीं माना बल्कि उसकी परिधि का विस्तार किया। उन्होंने पुराण, मिथक,रूपक एवं अनुश्रुतियों को भी इतिहास के रूप में देखा।'कामायनी' के आमुख में उन्होंने इस संदर्भ में लिखा है कि,"प्राय: लोग गाथा और इतिहास में मिथ्या और सत्य का व्यवधान मानते हैं,किंतु सत्य मिथ्या से अधिक विचित्र होता है।आदिम युग के मनुष्यों के प्रत्येक दल ने ज्ञानोन्मेष के अरुणोदय में जो भावपूर्ण इतिवृत संग्रहीत किए थे;उन्हें आज गाथा या पौराणिक आधार कह कर अलग कर दिया जाता है क्योंकि उन चरित्रों के साथ भावनाओं का भी बीच में सबंध लगा हुआ सा दीखता है। घटनाएं कहीं अतिरंजित सी जान पड़ती हैं। तथ्य संग्रहकारिणी तर्क-बुद्धि को ऐसी घटनाओं में रूपक का आरोप कर लेने की सुविधा हो जाती है...।... इतिहास की सीमा जहां से आरंभ होती है ठीक उसी के पहले सामूहिक चेतना की दृढ़ और गहरे रंगों की रेखाओं से, बीती हुई और भी पहले की बातों का उल्लेख स्मृति पट पर अमिट रहता है,परंतु कुछ अतिरंजित सा। किंतु उनमें भी कुछ सत्यांश घटना से संबद्ध है ऐसा तो मानना ही पड़ेगा।"[13]

अपने चयनधर्मी विवेक की तीसरी आंख (इतिहासबोध) से प्रसाद ने अपने नाटकों और काव्य में इतिहास को देखने का सांस्कृतिक उपक्रम किया। नवजागरण की दृष्टि उनके इतिहास चेतना में अनुस्यूत है।अपनी इतिहास दृष्टि और सौंदर्यचेतना को बनाने में प्रसाद ने हिंदू जीवन मूल्यों के अलावा बौद्ध दर्शन और शैव प्रत्यभिज्ञा दर्शन का उपयोग किया।

बौद्ध दर्शन से उन्होंने मुख्यतः दो चीजें लीं। एक तो नारी भावना और दूसरा करुणा का मानवीय पक्ष। शैव प्रत्यभिज्ञा दर्शन प्रसाद का मुख्य प्रेरणा स्रोत रहा है;संभवतः इसी को लक्ष्य करके नंददुलारे वाजपेयी ने प्रसाद को 'आधुनिक शैव'[14] कहकर पुकारा है। शैव धर्म विश्व के प्राचीनतम धर्मों में से है जिसकी भारत में तीन शाखाएं प्रचलित हैं। कर्नाटक के वीर शैव, 2. तमिलनाडु का शैव, कश्मीर का अद्वैत शैव। कश्मीर के अद्वैत शैव के सबसे प्राचीन चिंतक वसुगुप्त थे। प्रत्यभिज्ञा दर्शन इसी का अंग है।प्रसाद की कामायनी इसी दर्शन का शंखनाद करती है। अभिनव गुप्त द्वारा विरचित 'तंत्रालोक' और 'तंत्रालोकसार' शैव सिद्धांतों की समग्र किताब है। इसके अतिरिक 'शिवदृष्टि' (सीमानंद कृत), 'ईश्वरप्रतिज्ञा (उत्पलदेव कृत), प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी (अभिनव गुप्त) तथा क्षेमराज कृत 'प्रत्यभिज्ञा हृदयम' आदि इस दर्शन का प्रतिपादन करने वाले ग्रंथ हैं।

प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है-पहचान। जीव वस्तुतः शिव ही है, किंतु वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया है,और अपने देह मन से अपना तादात्म्य माने बैठा है। प्रत्यभिज्ञा का उपदेश अपने वास्तविक स्वरूप को समझने में सक्षम बनाने के लिए है। जैसे नन्हें बीज के भीतर विशाल वटवृक्ष निहित होता है वैसे ही यह विश्व महेश्वर में अंतर्निहित है।

यथा न्यग्रोधबीजस्थ शक्तिरूपो महाद्रुमः।

तथा हृदयबीजस्थ विश्वमेतच्चराचरम्।।"[15]

प्रसाद ने इसी सिद्धांत को कविता में यूं कहा है- "चिति का स्वरूप यह नित्य जगत।" कामायनी के श्रद्धा सर्ग में प्रत्यभिज्ञा दर्शन की निदर्शना काव्यात्मक रूप में यूं की गई है:

"कर रही लीलामय आनंद

महाचिति सजग हुई सी व्यक्त

विश्व का उन्मीलन अभिराम

इसी में सब होते अनुरक्त।"[16]

यह जीवन के प्रति गहरी अनुरक्ति का दर्शन है।रागवादी जीवन-दृष्टि। प्रसाद के रहस्यवाद का स्वरूप भी इसी के अनुरूप मानवीय और सांस्कृतिक है। 'आंसू' इसका जीता जागता उदाहरण है। वाजपेयी जी ने लिखा है कि "आंसू एक

मानवीय विरह काव्य है। आंसू में प्रसाद ने यह निश्चित रीति से प्रकट कर दिया है कि मानुषीय विरह-मिलन के इगितों पर वे विराट प्रकृति को भी सजा सजा कर नाच नचा सकते हैं। यह शेष प्रकृति पर मनुष्यता की विजय का शंखनाद है।"[17] 'दुख की पिछली रजनी बीच विकासता सुख का नवल प्रभात' कहने वाला कवि पलायनवादी कैसे हो सकता है? झरना, लहर या कि कामायनी तक में जो एक विरक्ति,क्षोभ या अवसाद का भाव है वह दरअसल "नवीन बौद्धिक अन्वेषणों और तज्जन्य संशयों का परिणाम जान पड़ता है।"[18] लहर के जिस गीत 'ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीर धीर' को पलायनवाद के उदाहरण के रूप में बहुधा पेश किया जाता है,वह दरअसल भौतिकवादी जीवन की जड़ता- यंत्रिकता को नकार कर प्रकृत जीवन की उत्कट अभिलाषा की कविता है। यह सकर्मकता और सृजन के लिए विश्राम की मुद्रा रचती है। यह दुनिया से पलायन की नहीं दुनिया के भीतर भिन्न मानवीय वातावरण की मांग करती कविता है। इसी मनोभूमि पर प्रसाद गीता के कर्म योग की इतनी प्रशस्त व्याख्या रच पाते हैं:[19]

"कर्म का भोग भोग का कर्म

यही जड़ का चेतन आनंद।"

यह बेहद दिलचस्प है कि जिस छायावाद को शिवदान सिंह चौहान ने सांप्रदायिक माना और कहा कि "इस छायावाद की धारा ने हिंदी साहित्य को जितना धक्का पहुंचाया उतना शायद ही हिंदू महासभा या मुस्लिम लीग ने भारत को पहुंचाया हो।"[20] वहीं 'विशाल भारत' में ही दिसंबर 1929 के अंक में छपे ठाकुर प्रसाद शर्मा के लेख में आया कि "जैसे ब्रजभाषा की कविता को लट,नीवी,श्रमबिंद से उद्धार करने की आवश्यकता है वैसे ही मैं समझता हूं कि छायावादी कविता को भी विपंची, हृत्तंत्री,झंझावात आदि से छुटकारा दिलाने की जरूरत है।"[21] तो वहीं दूसरे मार्क्सवादी आलोचक रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "छायावाद का विरोध भारतीय संस्कृति का विरोध है।"[22] नामवर सिंह ने तो छायावाद को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और पुनर्जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति माना और लिखा- "छायावाद हमारी विशेष सामाजिक व साहित्यिक आवश्यकता से पैदा हुआ और उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने ऐतिहासिक कार्य किया। समाज और साहित्य को उसने जिस तरह पुरानी रूढ़ियों से मुक्त किया उसी तरह आधुनिक,राष्ट्रीय और मानवतावादी भावनाओं की ओर प्रेरित किया। व्यक्तित्व की स्वाधीनता,विराट कल्पना,प्रकृति साहचर्य,मानव प्रेम, वैयक्तिक प्रणय,उच्च नैतिक आदर्श, देशभक्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता आदि के प्रसार द्वारा हिंदी जाति के जीवन में

ऐतिहासिक कार्य किया।"[23]

इस पूरे परिदृश्य के बीच देखा जाए तो जयशंकर प्रसाद का समूचा रचनाकर्म भारतीय इतिहास,दर्शन और संस्कृति की बुनियाद पर खड़ा रहकर एक खास तरह की भारतीय आधुनिकता की जमीन रच रहा है। आधुनिकता को लेकर के इतिहासकार संजय सुब्रमण्यन के विचार उल्लेखनीय है,"आधुनिकता कोई ऐसा वायरस नहीं है,जिसका जन्म पश्चिम में हुआ और फिर पूरी दुनिया में फैल गया। आधुनिकता सिर्फ भौतिक प्रगति का पर्याय भी नहीं है।भिन्न-भिन्न सभ्यताएं आधुनिकता के भिन्न-भिन्न रूप अलग-अलग समयों में विकसित करती रही हैं। भारतीय सभ्यता ने भी आधुनिकता का एक रूप विकसित किया था,जिसमें विवेक और प्रेम को अध्यात्म (Transidence) की भूमि पर एक साथ साधने का उपक्रम था।यहां इस बात का एहसास था कि भौतिक समृद्धि और आत्मिक तुष्टि पर्यायवाची नहीं है और ट्रांसीडेंस एक ऐसा सुख है जिसकी अनुभूति वर्चस्व भावना से ऊपर उठने पर ही होती है।"[24]

जयशंकर प्रसाद की आधुनिकता भारतीय सभ्यता द्वारा विकसित इसी देशज आधुनिकता की प्राणधारा से अनुप्राणित है। इड़ा और श्रद्धा क्रमशः विवेक और प्रेम के ही प्रतिरूप हैं जिसे प्रसाद अध्यात्म और मानवता की भूमि पर साधते हैं।प्रसाद का इतिहासबोध और भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रतिपादन भारतीय राष्ट्रीय एकता का बुनियादी सूत्र बनने की सामर्थ्य रखता है।

संदर्भ:

1. वाजपेयी, नंददुलारे (2020). प्रसाद का साहित्य-दर्शन, (संदर्भ:पुस्तक वार्ता, 83-84,जनवरी-जून 2020, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, पृष्ठ-1).
2. सिंह, विजय बहादुर . सांस्कृतिक सुगंधों की अनुगूंज (सदर्भः उपरिवत, पृ.4).
3. अज्ञेय अपने बारे में. नई दिल्ली: आकाशवाणी प्रकाशन, पृष्ठ-44-47.
4. प्रसाद, जयशंकर (2007).काव्य और कला तथा अन्य निबंध. प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 25.
5. सिंह, विजय बहादुर(2021). जातीय अस्मिता के प्रश्न और जयशंकर प्रसाद. प्रयागराज:साहित्य भंडार

प्रकाशन, पृष्ठ-60.

6. पटनायक, किशन (2015). विकल्पहीन नहीं है दुनिया. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. दूसरी आवृति, पृष्ठ-21.
7. वाजपेयी, नंददुलारे (2009). जयशंकर प्रसाद. प्रयागराज: लोक भारती प्रकाशन. भूमिका से पुस्तक वार्ता (83-84, जनवरी-जून 2020) पृष्ठ:10-11.
8. वाजपेयी, नंददुलारे. जयशंकर प्रसाद. (संदर्भ:उपरिवत, पृष्ठ:21).
9. उपाध्याय, करूणाशंकर (2022). जयशंकर प्रसाद:महानता के आयाम. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
10. मुक्तिबोध, गजानन माधव(1951). कामायनी एक पुनर्विचार. पांचवां संस्करण, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-7.
11. श्रोत्रिय, प्रभाकर . कवि परंपरा:तुलसी से त्रिलोचन, नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ:69.
12. कामायनी के 'आमुख' से।
13. प्रसाद, जयशंकर (2009). लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, पृ.21
14. क्षेमराज(1983). प्रत्यभिज्ञा हृदयम (अनु० जयदेव सिंह), द्वितीय संस्करण, वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ठ-8
15. कामायनी, श्रद्धा सर्ग।
16. वाजपेयी, नंददुलारे (2009).जयशंकर प्रसाद. प्रयागराज :लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ-49.
17. वही.
18. चतुर्वेदी, रामस्वरूप (2002). हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास. सोलहवां संस्करण. प्रयागराज: लोक भारती प्रकाशन, पृष्ठ-112.
19. विशाल भारत, मार्च 1937, (संदर्भ:सत्राची पत्रिका, जनवरी-मार्च, 2018, पृ०-13)
20. प्रधान, गोपाल (2002). छायावाद युगीन साहित्यिक वाद-विवाद. नई दिल्ली: स्वराज प्रकाशन, पृष्ठ-140
21. सिंह, विजय बहादर (2021). जातीय अस्मिता के प्रश्न और जयशंकर प्रसाद. प्रयागराज: साहित्य भंडार,

पृष्ठ- 40.

22. सिंह, नामवर. छायावाद. नई दिल्ली :राजकमल प्रकाशन, पृ०-151-152

23. सुब्रमण्यम, संजय. तद्भव, (संपा०-अखिलेश), अंक-18, पृ0-283